प्रकरण दस

''आवश्यकता की यह महत्त्वपूर्ण घड़ी''

विषय-वस्तु को उपयुक्त भाषा में, विशेषकर एक विदेशी भाषा में प्रस्तुत करने की हमारी योग्यता सचमुच विफल रहेगी और उसको सही ढंग से प्रस्तुत करने के हमारे सच्चे प्रयत्नों के बावजूद हमारी भाषा में बहुत-सी साहित्यक त्रुटियाँ हो सकती हैं। किन्तु हमें विश्वास है कि हमारी त्रुटियाँ कितनी भी क्यों न हों, फिर भी प्रस्तुत (विषय-वस्तु) के गांभीर्य पर ये लोगों का ध्यान जायेगा और समाज के नेता उसे स्वीकार करेंगें, क्योंकि यह सर्वशक्तिमान परमात्मा के महिमागान का एक सच्चा प्रयत्न है, जिसकी इस समय घोर आवश्यकता है।

—श्रीमद्‌भागवतम् स्कंद १, खंड १

भक्तिवेदान्त स्वामी ने केशव मठ के कुछ भक्तों को साथ लेकर प्रचार के लिए आगरा, कानपुर, झाँसी और दिल्ली की अल्पकालिक यात्रा की। लेकिन वे अपने स्थान, वंशीगोपालजी मन्दिर को शीघ्र लौट आये। अब उन्हें अभय बाबू कोई नहीं कहता था; मित्रों के बीच भी वे स्वामीजी या महाराज हो गये थे। वे प्रायः स्वामी भक्तिवेदान्तजी, स्वामी महाराज, ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी आदि सम्बोधनों से पुकारे जाते। लोग तुरन्त उन्हें साधु मानने लगे और सम्मान देने लगे। इतना होने पर भी उनकी मूलभूत समस्याएं ज्यों की त्यों थी। वे लिखना चाहते थे और उसे प्रकाशित करना चाहते थे, लेकिन उनके पास धन नहीं था। वे भगवान् के सन्देश को प्रसारित करना चाहते, लेकिन कोई सुनने वाला नहीं था। उनके स्वामी हो जाने से इन चीजों में कोई अन्तर नहीं आया था।

जब एक पुस्तकालयाध्यक्ष ने भक्तिवेदान्त स्वामी को सलाह दी कि वे पुस्तकें लिखें (क्योंकि वे स्थायी होती हैं, जबकि समाचार-पत्र एक बार पढ़ने के बाद फेंक दिए जाते हैं) तब उन्हें लगा कि इस व्यक्ति के माध्यम से उनके आध्यात्मिक गुरु ही बोल रहे हैं। तब भारतीय सेना के एक अधिकारी ने भी, जिसे *बैक टु गॉडहेड* पसन्द थी, यही बात कही। भक्तिवेदान्त स्वामी को प्रतीत हुआ कि यह सब उनके आध्यात्मिक गुरु उनके लिए उद्घाटित कर रहे हैं। जैसे अपने आध्यात्मिक गुरु का कोई अधीनस्थ सेवक के रूप में वे सदा उनकी इच्छाओं के विषय में सोचा करता है और उनके मार्गदर्शन की राह देखता रहता है, उसी प्रकार भक्तिवेदान्त स्वामी को बदले में गुरु के आशीर्वचन और उनकी व्यक्तिगत उपस्थिति की अनुभूति हुई। श्रील भक्तिसिद्धान्त के विश्वस्त सम्पर्क की भावना उन में जितनी अधिक अनुभूत होती थी, उतनी ही अधिक वे पुस्तकें लिखने की प्रेरणा अनुभव करने लगे।

उनका ध्यान *श्रीमद्भागवत* पर गया, क्योंकि वह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और आधिकारिक वैष्णव धर्म-ग्रंथ था। यद्यपि *भगवद्गीता* सम्पूर्ण वैदिक ज्ञान का सार तत्त्व थी, पर वह संक्षेप में वर्णित थी, जबकि *श्रीमद्भागवत* का रूप विस्तृत था। और श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती तथा भक्तिविनोद ठाकुर दोनों ने भागवत पर बँगला में टीकाएँ लिखी थीं। सच तो यह है कि अतीत में वैष्णव आचार्यों में से अधिकतर *श्रीमद्भागवत* पर भाष्य लिख चुके थे। स्वयं भगवान् चैतन्य ने *श्रीमद्भागवत* की शुद्ध वैदिक साहित्य के रूप में संस्तुति की थी। इस ग्रंथ का अँग्रेजी अनुवाद और इसकी टीका किसी दिन अखिल विश्व का हृदय-परिवर्तन कर सकती है। और यदि वे थोड़ी सी भी पुस्तकें प्रकाशित कर सकें, तो उनके प्रचार-कार्य में अभिवृद्धि होगी; वे विश्वास के साथ विदेश जा सकते थे और वहाँ लोगों के सामने उन्हें खाली हाथ नहीं उपस्थित होना पड़ेगा।

• • •

एक दिन राधा-दामोदर मन्दिर के मालिक, गौरचन्द गोस्वामी, भक्तिवेदान्त स्वामी के पास गये और उन्होंने उन्हें राधा-दामोदर मन्दिर में रहने के लिए आमंत्रित किया; जीव गोस्वामी और रूप गोस्वामी का शाश्वत अधिवास होने के कारण वह उनके लेखन और अनुवाद कार्य के लिए अधिक उपयुक्त स्थान होगा। भक्तिवेदान्त स्वामी को रुचि हो गई। उन्होंने वहाँ नित्य जाना कभी बन्द नहीं किया था और भगवान् चैतन्य के आन्दोलन के महान् नेताओं, जीव गोस्वामी और रूप गोस्वामी की समाधियों के दर्शन से उन्हें बराबर प्रेरणा मिलती थी। लेकिन जब वे उन दो कमरों को देखने गये, जो उन्हें मिलने वाले थे, तो उन्होंने उन्हें खराब दशा में पाया; कई वर्षों से उनकी मरम्मत नहीं हुई थी, न उनमें कोई

रहा था। लेकिन वे अवसर को खोना नहीं चाहते थे; अतः पाँच रुपए महीने पर उन्होंने उन्हें ले लिया। उन्होंने हिसाब लगाया कि पाँचसौ रुपये से कुछ अधिक में कमरों में बिजली लग जायेगी और अच्छी तरह उनकी मरम्मत हो जायेगी; जब यह सब हो जायेगा, तो वे उनमें रहने के लिए जा सकेंगे।

भक्तिवेदान्त स्वामी को आमंत्रण शुभ लगा, वहाँ रहते हुए वे *श्रीमद्भागवत* के अँग्रेजी अनुवाद की नई योजना में सहायता प्राप्त कर सकेंगे। वृन्दावन के सभी मन्दिरों में से राधा-दामोदर मन्दिर में छह गोस्वामियों और उनके अनुयायियों के मौलिक लेखों का सबसे बड़ा संग्रह था। वहाँ दो हजार से अधिक पृथक् पाण्डुलिपियाँ थीं; बहुत-सी पाण्डुलिपियाँ तीन सौ और कुछ चार सौ वर्ष भी पुरानी थीं। भक्तिवेदान्त स्वामी प्रतीक्षा करने लगे कि किसी दिन वहाँ श्रील रूप गोस्वामी और श्रील जीव गोस्वामी के साहचर्य में, रहने और सेवा करने का अवसर मिलेगा। अभी वे वंशीगोपाल मन्दिर में रहेंगे और जो कुछ धन उनके हाथ लगेगा उससे राधा-दामोदर मन्दिर के कमरों की धीरे धीरे मरम्मत कराएँगे।

• • •

भक्तिसिद्धान्त सरस्वती का यह एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त था कि प्रचारक को नगरों में जाना चाहिए और किसी तीर्थस्थान के एकान्त में वास नहीं करना चाहिए। इसी विचार से भक्तिवेदान्त स्वामी दिल्ली जाते रहे, यद्यपि उनके लिए वह नरक के समान था और वहाँ उनका कोई निश्चित निवासस्थान नहीं था। प्रायः व्यवसायी लोग उन्हें अपने यहाँ ठहरा लेते, क्योंकि वे उस भारतीय संस्कृति के कारण अनुगृहीत अनुभव करते थे, जो यह कहती है कि यदि कोई भला आदमी भगवान् की कृपा का भाजन बनना चाहता है, तो उसे साधुओं को शरण देनी चाहिए, उन्हें भोजन और रहने का स्थान देना चाहिए। लेकिन ऐसे भले आगमी का दृष्टिकोण हिन्दुत्व की भावुकता पर आधारित था और उनका आदर-सत्कार कृत्रिम था। वे भक्तिवेदान्त स्वामी के कार्य की सही परख नहीं कर सकते थे और भक्तिवेदान्त स्वामी ऐसे व्यक्ति नहीं थे, जो किसी मेजबान पर अपने को लादते।

तब उन्होंने राधा प्रेस के मैनेजर श्रीमान् हितशरण शर्मा से बात की। श्रीमान् शर्मा लीग आफ डिवोटीज के लिए पहले इश्तिहार और लेखन सामग्री छाप चुके थे और भक्तिवेदान्त स्वामी किसी अवसर पर उनके घर में ठहर चुके थे। श्रीमान् शर्मा ने भक्तिवेदान्त स्वामी का परिचय पंडित श्रीकृष्ण शर्मा से कराया, जो जातिगत ब्राह्मण और सक्रिय धार्मिक पुरुष थे और दिल्ली की सौ वर्ष पुरानी धार्मिक संस्था, श्री नवल प्रेम सभा के सचिव थे। भक्तिवेदान्त स्वामी के साहित्यिक कार्यों के प्रति सहानुभूति से प्रेरित होकर कृष्ण पंडित ने

उन्हें पुरानी दिल्ली के छिप्पीवाड़ा के पास राधा-कृष्ण मन्दिर में एक कमरा रहने के लिए दिया। अब भक्तिवेदान्त स्वामी को दिल्ली में एक स्थायी कार्यालय मिल गया।

• • •

मथुरा से चलकर गाड़ी चाँदनी चौक के निकट पुरानी दिल्ली स्टेशन पहुँचती थी। चाँदनी चौक की चौड़ी सड़क पर भीड़ एक नदी जैसी उमड़ती रहती—रिक्शाओं से सड़क भरी रहती; एक दूसरे के अगल-बगल कभी-कभी एक दर्जन तक साइकिल-सवार साथ भागते होते, कुछ कम संख्या में ऑटो रिक्शा भी चलते रहते; भारी ठेलों को खींचते हुए आदमी पैदल दौड़ते रहते, कभी-कभी भारी बोझों से लदे गधों, बैंलों, ऊँटों और हाथियों को हाथ में कोड़े लिए हुए आदमी हाँकते होते।

ऐसी भीड़ से भरे चाँदनी चौक से होकर भक्तिवेदान्त स्वामी लाल-किला से आगे छिप्पीवाड़ा के लिए छोटा रास्ता अपनाते। गौरीशंकर मन्दिर को अपने बाएँ छोड़ते हुए वे विशाल जामा मस्जिद से आगे एक गली में से निकलते। छिप्पीवाड़ा के निकट सड़के और सँकरी हो जातीं। १९४७ ई. में हिन्दुस्तान-पाकिस्तान का बँटवारा होने के पहले छिप्पीवाड़ा मुस्लिम बस्ती थी। बाद में वहाँ हजारो पंजाबी हिन्दू बस गये। छिप्पीवाड़ा हिन्दू-मुसलमानों की एक मिली-जुली बस्ती बन गई, इतनी घनी बस्ती कि उसकी सड़कों पर मोटर-गाड़ियों का जाना मना था, केवल बैलगाड़ियाँ और रिक्शे ही उसकी सँकरी भीड़-भरी गलियों में प्रवेश कर सकते थे, और किसी-किसी क्षेत्र में रिक्शों को भी जाने से रोकने के लिए लोहे के खंभे गाड़ दिए गये थे। सड़कों और गलियों में क्रय-विक्रय करने वालों और चलने वाले कामगरों का ऐसा घना जमघट होता कि उनके बीच से किसी साइकिल वाले का भी निकल जाना गड़बड़ पैदा कर देता था। गलियाँ, दर-गलियाँ इतनी पास-पास और तंग थीं कि उनकी ऊपरी मंजिलों के छज्जों में कुछ इंचों का फासला रह गया था, जैसे उनसे सड़क के ऊपर छत-सी बन गई हो। उसके नीचे सड़क पर चलने वालों को आकाश का संकरा खंड-भर दिखाई पड़ता था। निजी बाड़ों, दुकानों, गलियों और सार्वजनिक सड़कों का अतंर मिट-सा गया था। यद्यपि अधिकतर दुकानों पर साइन बोर्ड हिन्दी और अँग्रेजी में लगे थे, कुछ दुकानों के साइन बोर्ड घुमावदार अरबी लिपि में भी थे और काले कपडों में पर्दे (नकाब) वाली स्त्रियाँ आम दिखाई देती थीं। शहरी जीवन के ऐसे घने भाग में कृष्ण पंडित के राधा-कृष्ण मन्दिर का सँकरा प्रवेश-द्वार था, जिस पर गणेश देवता का फलक लगा था और जिसके सादे मेहराबदार साधारण दरवाजे के ठीक ऊपर घोंसला बनाने वाले कबूतरों की एक पंक्ति बैठी थी।

मन्दिर और उसमें रहने वाले परिवारों का वातावरण पड़ोस की कोठरियों से कुछ

कुछ मिलता-जुलता था। यद्यपि मन्दिर का कमरा अँधेरा था, किन्तु वेदी पर विराजमान राधा-कृष्ण के श्रीविग्रह भलीभाँति आलोकित थे। राधारानी का रंग क्रीम जैसा था, कृष्ण श्याम वर्ण के संगमरमर के और लगभग दो फुट लम्बे थे। ताजे घिसे चंदन के लेप की बिन्दियों से उनका शृंगार किया गया था और माथे पर पीले चंदन का चिह्न था। दोनों श्रीविग्रह रेशम के परिधान पहने थे। श्रीविग्रहों के कमरे के ठीक ऊपर दूसरी मंजिल पर अतिथि-शाला थी—भक्तिवेदान्त स्वामी का कमरा। सीमेंट की दीवारें और फर्श नंगे थे। फर्श के बीच में से ऊपर उठा हुआ एक तीन फुट का कंकरीट से बना सर्पिल पिरामिड था जो इस बात की सूचना देता था कि श्रीविग्रह ठीक उसके नीचे अवस्थित हैं।

भक्तिवेदान्त स्वामी को शीघ्र मालूम हो गया कि उनका कमरा एकान्त में नहीं था, वरन् उसके अगल-बगल अन्य आवासीय कमरे भी थे। दरवाजे के बाहर धातु की एक जाली थी, जो वंशीगोपालजी मन्दिर और केशवजी मठ की जालियों से भी छोटी थी, और जिसके नीचे मन्दिर का छोटा-सा आँगन होने का पता लगता था। छत पर से शायद ही कोई वृक्ष दिखाई पड़ता था। आसपास की कोठरियों की छतें एक दूसरे से इतनी सटी-सटी थीं कि ऐसा लगता था कि कोई चाहे तो एक छत से दूसरी छत पर से होता हुआ विशाल जामा मस्जिद तक पहुँच सकता था। मस्जिद के बड़े-बड़े तीन गुम्बद, जिनके अगल-बगल उनसे भी ऊँची मीनारें थीं, आम मकानों से ऊँचे दिखाई देते थे। कबूतरों के झुंड के झुंड उड़कर आते और उन गुम्बदों पर बैठते या आकाश में गोलाई में उड़ जाते।

कृष्ण पंडित काले रंग का हल्का सूती कोट पहनते थे, जो पंडित नेहरू के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय पहचान प्राप्त कर चुका था। वे गाँधी टोपी भी पहनते थे। वे अच्छी अँग्रेजी बोलते थे और बातूनी थे। पास-पड़ोस में उनकी अच्छी ख्याति थी और लोग उनका आदर करते थे। उन्होंने भक्तिवेदान्त स्वामी को भगवान-द्वारा-प्रेषित के रूप में देखा—ऐसे साधु के रूप में जिनकी उन्हें देखभाल करनी थी और इस प्रकार एक बार पुनः हिन्दू संस्कृति की धर्मपरायणता सिद्ध करनी थी। उन्हें अपने नये अतिथि अच्छे लगे—सीधे-सादे, सौम्य, कृपालु और निष्णात वैष्णव विद्वान।

कृष्ण पंडित ने कहा कि वे भक्तिवेदान्त स्वामी के सनातन धर्म के मिशन का महत्त्व और दिल्ली में एक कार्यालय की उनकी आवश्यकता को समझते थे और उन्होंने प्रण किया कि उनके अतिथि की जो भी जरूरत होगी उसे वे पूरी करेंगे। यद्यपि भक्तिवेदान्त स्वामी को अपने लिए कुछ भी माँगने में संकोच था, कृष्ण पंडित उनके बैठने के लिए एक चटाई और एक छोटा मेज ले आये और उन्हें पिरामिड के सामने रखकर वे एक गद्दी भी ले आये। उन्होंने भक्तिवेदान्त स्वामी को बताया कि कमरे में लगा हुआ एकमात्र बल्ब कैसे जलाया और बुझाया जाता है। धातु का शेड और बल्ब एक तार से लटके थे और हाथ से

उन्हें नीचे या ऊपर किया जा सकता था। वे राधा और कृष्ण का एक चित्र लाए, जिसे जयपुर के महाराज ने उनके गुरु को दिया था। उन्होंने दीवार के एक आले में चित्र को रख दिया, आनन्द के साथ यह सोचते हुए कि भक्तिवेदान्त स्वामी एक सच्चे भक्त की दृष्टि से उसे देख सकेंगे।

भक्तिवेदान्त स्वामी चाहते थे कि पश्चिम जाने के पहले उन्हें पुस्तकें लिखने का एक सुरक्षित स्थान मिल जाये और भगवान् कृष्ण ने उसकी व्यवस्था कर दी थी। अब वे लिखने का कार्य चाहे वृन्दावन में करें, चाहे दिल्ली में। उन्होंने *बैक टु गॉडहेड* का प्रकाशन तुरन्त ही फिर आरम्भ कर दिया और वे उसमें पहले की पाण्डुलिपियों के उदाहरण क्रमबद्ध करने लगे। साथ ही उन्होंने *श्रीमद्भागवत* लिखना आरम्भ किया।

जब कृष्ण पंडित को मालूम हुआ कि उनके अतिथि भक्तिवेदान्त *बैक टु गॉडहेड* को निकालने में अकेले संघर्ष कर रहे हैं, तो उसके व्यापार सम्बन्धी कुछ कार्यों में स्वेच्छा से सहायता करने को वे आगे आये। भक्तिवेदान्त स्वामी कृष्ण पंडित की हार्दिक सहायता से सचमुच बहुत प्रसन्न हुए और सराहना-स्वरूप उन्होंने उनके नाम के आगे 'हरि-भक्तानुदास' जोड़ दिया, जिसका अर्थ था "वह जो भगवान् के भक्त की सेवा करता है।" छिप्पीवाड़ा में छह महीने बिताने के बाद भक्तिवेदान्त स्वामी ने मन्दिर की अतिथि-नोट बुक में यह प्रशंसा दर्ज की :

> मुझे यहाँ यह लिखते प्रसन्नता होती है कि मैं अपने मुख्य-स्थान १/८५९, केशीघाट, वृन्दावन (उ.प्र.) से केवल भगवान् की भक्ति के प्रचार का आध्यात्मिक उद्देश्य लेकर दिल्ली आया। और मुझे यह लिखते और भी प्रसन्नता है कि श्रीमान श्रीकृष्ण शर्मा, हरिभक्तानुदास ने मेरे साहित्यिक कार्यकलाप के लिए मुझे एक उपयुक्त कमरा दिया है। मैं यहाँ से *बैक टु गॉडहेड* अंग्रेजी पाक्षिक पत्रिका निकाल रहा हूँ और नवल प्रेम सभा के अवैतनिक सचिव, श्रीकृष्णजी, श्रीमद्भागवत् पर मेरे प्रतिदिन व्याख्यान की व्यवस्था करते हैं।
>
> श्रीकृष्णजी के पिता स्वर्गीय श्री ज्योति प्रसाद शर्मा भी मेरे परिचित थे और उनके जीवन-काल में मैं जब भी दिल्ली आता था, वे मेरे ठहरने के लिए स्थान की व्यवस्था करते थे। उनके योग्य पुत्र भी अपने शीलवान् पिता के चरण-चिह्नों पर चल रहे हैं और नवल प्रेम सभा के सचिव के रूप में वे सारे नगर में राम-नाम के प्रचार की सेवा में तत्पर हैं।

सुपाठ्य अँग्रेजी अक्षरों में भक्तिवेदान्त स्वामी लिखते गये कि उनकी राय में मन्दिरों

का उपयोग जनता को केवल आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा देने के लिए होना चाहिए और उनके जीवन का निजी उद्देश्य, मन्दिरों का संगठन, इसी कार्य के लिए करना था।

> मन्दिर उन सामान्य गृहस्थों के लिए नहीं हैं, जो मात्र पाशविक वृत्तियों में लगे रहते हैं। मन्दिर में रहने का अधिकार केवल उनको है, जो उसके अधिपति भगवान् की सेवा में सचमुच लगे हैं, अन्य लोगों को नहीं।

छिप्पीवाड़ा में *श्रीमद्भागवत* की रचना के प्रयत्न में लगे हुए भक्तिवेदान्त के मन में अगल-बगल के परिवारों के शोरगुल से, जो उनके भक्तिहीन पारिवारिक कलहों से कभी कभी होता था, यह भाव हो गया था कि मन्दिर को आवासीय भवन के रूप में उपयोग में नहीं लाना चाहिए।

• • •

स्थिर होकर *श्रीमद्भागवत* का अनुवाद आरम्भ करने के महान् कार्य की योजनाओं के बावजूद भक्तिवेदान्त स्वामी अन्य तरीकों से भी प्रचार करने को तैयार थे। अक्तूबर १९५९ ई. में उन्होंने *टाइम्स आफ इंडिया* में एक समाचार लेख पढ़ा था। दो अमरीकी वैज्ञानिकों को एंटीप्रोटोन की खोज करने के लिए भौतिक विज्ञान में नोबेल पुरस्कार मिला था। लेख में कहा गया था कि "इस नई खोज की एक मूलभूत मान्यता यह है कि एक दूसरे संसार या अभौतिक संसार का अस्तित्व सम्भव है।" "दूसरे संसार" से भक्तिवेदान्त को *भगवद्गीता* में वर्णित शाश्वत आध्यात्मिक संसार का स्मरण हो आया। वे अच्छी तरह जानते थे कि 'अभौतिक संसार' को वैज्ञानिक, "शाश्वत" या "आध्यात्मिक" संसार के अर्थ में प्रयोग नहीं कर रहे थे; लेकिन वैज्ञानिक मनोवृत्ति के लोगों की अभिरुचि पर अधिकार पाने के लिए, उनके मन में उन्हीं की वैज्ञानिक शब्दावली के प्रयोग का विचार आया। उन्होंने एक ऐसे निबन्ध की कल्पना की, जिसमें अभौतिक कण या अभौतिक संसार की शब्दावली में *भगवद्गीता* के ईश्वरवादी विज्ञान का प्रस्तुतीकरण हो।

यह वह समय था, जबकि सारे संसार में अन्तरिक्ष यात्रा की चर्चा हो रही थी। भारतीय संचार-साधनों से रूसी स्पुतनिक का विवरण दो वर्ष पहले मिल चुका था। अन्तरिक्ष यात्रा की होड़ शुरू हो चुकी थी। अन्तरिक्ष-यात्रा में प्रचलित जन-रुचि का लाभ उठाकर भक्तिवेदान्त स्वामी ने वर्णन किया कि भक्तियोग से आत्मा किस प्रकार अन्तरिक्ष की अधिकतम सीमाओं को पार करके आध्यात्मिक जगत के शाश्वत लोकों में पहुँच सकता है, जहाँ जीवन आनन्दमय और ज्ञानमय है। *भगवद्गीता* के श्लोकों के अपने हाल

के अनुवाद में उन्होंने उद्धरण दिए, जो अभौतिक कण और अभौतिक संसार की परिकल्पना वाले नये भौतिक विज्ञान की भाषा में व्यक्त किये गये थे। *ईजी जर्नी टू अदर प्लैनेट्स* (अन्य ग्रहों की सरल यात्रा) शीर्षक पुस्तक की पाण्डुलिपि पन्द्रह हजार शब्दों में पूरी हुई थी। उन्होंने पाण्डुलिपि राधा प्रेस के हितशरण शर्मा को दिखाई, लेकिन उस छोटी सी पुस्तिका को छापने के लिए उनके पास पैसे नहीं थे।

फरवरी १९६० ई. में भक्तिवेदान्त स्वामी ने उसे *बैक टु गॉडहेड* में दो किश्तों में स्वयं छापने का निश्चय किया। गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद के भौतिक विज्ञानी श्री वाई. जी. नायक की, जो *बैक टु गॉडहेड* डाक से मँगाते थे, उन लेखों पर तुरन्त प्रतिक्रिया मिली। उनका विचार था कि भक्तिवेदान्त स्वामी का अभौतिक सिद्धान्त का यह प्रयोग "सचमुच महत्त्वपूर्ण है। निस्सन्देह, यह एक उत्कृष्ट निबन्ध है।" डॉ. नायक ने भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान के विषय में और आगे विचार-विनिमय में अपनी रुचि व्यक्त की और भक्तिवेदान्त स्वामी ने उसी उत्साह के साथ उनको उत्तर दिया। अन्त में उन्होंने डॉ. नायक से आग्रह किया कि भारत की सांस्कृतिक सभ्यता को समस्त संसार में वितरित करने में वे उनका साथ दें।

भक्तिवेदान्त स्वामी को विश्वास हो गया कि उनके इस प्रकार के निबन्ध में अँग्रेजी बोलने वालों को प्रभावित करने की बड़ी शक्ति है, इसलिए उन्होंने *ईजी जर्नी टू अदर प्लैनेट्स* को बिना ठोस जल्दी की पुस्तक के रूप में छापने के निमित्त धन संग्रह करने के लिए कड़ा परिश्रम किया। अन्त में १९६० ई. की पतझड़ ऋतु में पुस्तक छप गई। दिल्ली विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ. एन. के. सिद्धान्त का प्राक्कथन देर से पहुँचा, लेकिन उसे पुस्तक के अन्दर सम्मिलित कर लिया गया।

> इस पुस्तक को पढ़ने से हर एक को लाभ होगा; विशेषकर विद्यार्थियों को इसे ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए और भक्तियोग का अभ्यास करना चाहिए। उससे मन को बल मिलेगा और चरित्र का निर्माण होगा। मुझे प्रसन्नता होगी, यदि विद्यार्थी और अध्यापक दोनों इसे पढ़ें।

बहुत से भारतीय वैज्ञानिकों और विद्वानों ने पुस्तक की समीक्षाएँ भेजीं, जिनमें उन्होंने उसके "वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण" को रेखांकित किया और "अन्तरिक्ष को पार करने के लिए यांत्रिक विधि से गति को तीव्र बनाने की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक प्रयास और आध्यात्मिक मुक्ति की विधि को श्रेष्ठ बताया।" पुस्तक में केवल अड़तीस पृष्ठ थे, लेकिन यह एक पृष्ठवाली *बैक टु गॉडहेड* पत्रिका के अतिरिक्त उनकी प्रथम पुस्तक थी।

उन्होंने इस छोटी पुस्तक को जोरदार ढंग से वितरित करने की भरपूर कोशिश की। उसकी एक प्रति उन्होंने राष्ट्रीय अजायबघर, नई दिल्ली के डॉ. पी. बनर्जी को दी।

डॉ. बनर्जी : *वे पुस्तकालय आया करते थे और पुस्तकें देखा करते थे। मेरी मुलाकात उनसे वहीं हुई। उन्होंने मुझे एक पुस्तक दी—ईजी जर्नी टु अदर प्लैनेट्स। उसकी कुछ प्रतियाँ उन्होंने एक रुपया या आठ आने प्रति पुस्तक की दर से वितरित करने को दी।*

मुझे उनकी ओर आकर्षण हुआ। मुझे लगा कि वे बिना बाह्य आडम्बर के सच्ची भक्ति वाले एक संत-पुरुष हैं। अपने नाम और यश के लिए लोगों को वे अपनी ओर आकृष्ट नहीं करना चाहते थे। उनकी सहायता करने वाला कोई नहीं था। वे छिप्पीवाड़ा में एक छोटे-से कमरे में अकेले रहते थे। अपने अध्ययन में वे लगे रहते थे। इसलिए मैंने पूछा, "महोदय, यदि आपके पास समय हो और मेरे यहाँ आने में आपको संकोच न हो, तो कृपा करके हर रविवार को मेरे यहाँ आइये और मेरा भागवत् सुनाइए। वे तुरन्त राजी हो गये। वे अच्छे विद्वान थे। धर्मशास्त्रों में उनकी निपुणता थी और दूसरों तक अपने विचार पहुँचाने में उनकी रुचि थी। वे बहुत अच्छे वक्ता थे और वार्तालाप में पारंगत थे। वे बहुत विनयशील थे।

वे जो कुछ कहते, उसे बहुत स्पष्टता से कहते थे। वे बँगला में बोलते थे और श्लोकों के सारांश की व्याख्या करते थे। कभी-कभी वे टीकाओं का भी निर्देश करते थे—केवल मुझे अतिरिक्त जानकारी देने के लिए। अन्य लोगों को टीकाओं में या कठिन प्रकरणों को जानने में रुचि नहीं थी; लेकिन चूँकि वे जानते थे कि उस क्षेत्र में मेरा कुछ अध्ययन है, इसलिए मेरे लिए, और एक दो और सज्जनों के लिए, जो वयोवृद्ध और सुविज्ञ थे, वे टीकाओं की व्याख्या किया करते थे।

मेरे घर पर लगभग बीस से तीस लोग तक एकत्र होते थे और वे अपनी व्याख्या एक-दो घण्टे तक करते रहते। तब वे हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करते थे और हम सब करताल और हारमोनियम बजाकर उनका साथ देते। इस तरह बैठक में बड़ा आनन्द आता था, क्योंकि वे कठिन बातों को बहुत आसान बना देते थे और वे हर चीज की व्याख्या हमारी आवश्यकताओं के अनुसार कर देते थे। वे जानते थे कि इतना इस व्यक्ति के लिए है, इतने का वास्ता उस व्यक्ति से है और इतने का औरों से।

बैठक के बाद वे मेरे घर में थोड़ा विश्राम करते थे। मैं उनसे भोजन के लिए प्रार्थना करता, तो वे कहते कि दूसरों का बनाया भोजन वे ग्रहण नहीं करते। लेकिन जब वे मेरी पत्नी से मिले और उन्होंने कहा कि उनके लिए भोजन बनाने में उन्हें प्रसन्नता होगी, तब वे बोले, "बहुत अच्छा, मैं भोजन करूँगा।" उसके बाद जब वे रविवार को मेरे यहाँ आते, मेरी पत्नी उनके लिए भोजन बनाया करती थीं।

कभी-कभी वे मुझसे पूछते कि इस क्षेत्र में अधिकाधिक लोगों को कैसे आकृष्ट किया जाये। लेकिन सरकारी कर्मचारी होने के नाते मैं खुले रूप में किसी को मना नहीं सकता था। न ही किसी बड़े स्तर पर उनके लिए कोई व्यवस्था करने के लिए मेरे पास समय था, किन्तु इससे उन्हें संतोष नहीं हुआ। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या बैठक की व्यवस्था मैं अधिक बड़े पैमाने पर कर सकता हूँ। वे जानते थे कि जो लोग मेरे घर की बैठक में भाग लेते थे वे बहुत वृद्ध थे—सत्तर, अस्सी के या एक तो नब्बे वर्ष के थे। सभी अवकाश-प्राप्त और सुशिक्षित थे।

बैठकों का क्रम एक वर्ष तक चलता रहा। उसके बाद उन्होंने कहा कि वे अन्य स्थानों को जाने का प्रयत्न करेंगे। उन्होंने मुझसे बैठकें चलाते रहने को कहा। लेकिन मैंने कहा कि "मैं दीक्षित नहीं हूँ।" उन्होंने कहा कि फिर भी मैं बैठकें चला सकता था, क्योंकि मैं जन्म से ब्राह्मण था। कुछ समय तक बैठकें चलाने का उन्होंने मुझे अधिकार दिया। लेकिन मैं चला नहीं सका, क्योंकि मुझे बाहर जाना पड़ता था। उनके जाने के बाद मेरी रुचि जाती रही। मैं सरकारी कर्मचारी था।

• • •

ईजी जर्नी टू अदर प्लैनेट्स एक प्रकार की तैयारी थी, *श्रीमद्भागवत* को प्रस्तुत करने के उनके वास्तविक कार्य की। लेकिन पुस्तकों की आवश्यकता के विषय में उन्हें और अधिक विश्वास हो गया। प्रचार के लिए उन्हें पुस्तकें चाहिए थीं, विशेषकर यदि उन्हें पश्चिमी देशों में जाना था। पुस्तकों की सहायता से वे आध्यात्मिक क्रान्ति पैदा कर सकते थे। पश्चिम में साहित्य बहुत था, लेकिन पश्चिमी लोगों के पास उनके आध्यात्मिक शून्य को भरने के लिए ऐसा कुछ नहीं था।

यद्यपि *श्रीमद्भागवत* को वे अधिक से अधिक समय देना चाहते थे, तो भी *बैक टु गॉडहेड* को चलाने में वे लगे रहे और उपलब्ध पुस्तकों की पाण्डुलिपियों से उद्धरण लेकर उन्हें लेख के रूप में उसमें देते रहे। लेकिन कभी कभी वे नये लेख भी लिखते और छापते। "रिलेवेंट इनक्वायरी" (प्रासंगिक जिज्ञासा) में उन्होंने लिखा :

> भगवान् के धाम में लौटने का प्रचार करके हम केवल मानव-जाति को बचाने का विनीत प्रयास कर रहे हैं। यह प्रचार झूठा नहीं है। यदि *सत्* का अस्तित्व है तो भगवान् के धाम में लौटने का यह प्रचार उस सतयुग का आरम्भ है।

"ए गाडलेस सिविलिजेशन" (एक अनीश्वरतावादी सभ्यता) नामक लेख में

भक्तिवेदान्त स्वामी ने प्रधानमंत्री नेहरू की इन शिकायतों का उल्लेख किया कि धर्म के नाम पर जनता के धन का दुरुपयोग किया जाता है। भक्तिवेदान्त स्वामी ने टिप्पणी की कि यद्यपि निस्सन्देह ऐसे उदाहरण बहुत से हैं, जहाँ धार्मिक नेता आपराधिक मामलों में फँसे पाये जाते हैं, लेकिन यदि आँकड़ों की तुलना की जाये, तो राजनीतिक धूर्तों की संख्या धार्मिक धूर्तों से अधिक होगी। यद्यपि धार्मिक धूर्तता के प्रति पंडित नेहरू की चेतावनी सही थी, लेकिन वह चेतावनी आध्यात्मिक संस्थाओं में पूरा सुधार लाए बिना कारगर नहीं हो सकती थी और वह सुधार राज-नेताओं के पूर्ण सहयोग से ही सम्भव था। भक्तिवेदान्त स्वामी ने अपने उस पत्र से उद्धरण दिया, जिसमें उन्होंने प्रधानमंत्री नेहरू से *भगवद्गीता* का अध्ययन शुरू करने को कहा था। परन्तु, जैसाकि भक्तिवेदान्त स्वामी ने *बैक टु गॉडहेड* के अपने पाठकों को सूचित किया, पंडित नेहरू ने उनके उस पत्र का उत्तर कभी नहीं दिया। "आध्यात्मिक ज्ञान के अभाव में... उन्होंने सोचा कि लीग आफ डिवोटीज (भक्त-संघ) भी उन बहुत-से मठों और मन्दिरों की तरह ही होगा, जो उनके लिए सिरदर्द हो रहे थे।"

भक्तिवेदान्त स्वामी का पंडित नेहरू पर अभियोग यह था कि वे समझते थे कि प्रत्येक आध्यात्मिक संस्था "जनता से धन संग्रह करने का तहखाना है और बाद में उस धन का शंकास्पद कार्यों में दुरुपयोग किया जाता है।"

> किन्तु वे उन तथाकथित साधुओं का समर्थन करते हैं, जो सामाजिक सेवा करते हैं पर आध्यात्मिक विज्ञान के विषय में बकवास करते हैं। ऐसा इसलिए है कि पंडित नेहरू को स्वयं आध्यात्मिक ज्ञान नहीं है, यद्यपि वे ब्राह्मण और पंडित हैं। आध्यात्मिक ज्ञान का अभाव शूद्रों या श्रमिकों का गुण है।

उन्होंने पंडित नेहरू से प्रार्थना की कि वे भगवान् या कृष्ण शब्द से भयभीत न हों : "पर हम उन्हें विश्वास दिला सकते हैं कि भय का कोई कारण नहीं है, क्योंकि कृष्ण हर एक के हितैषी हैं और हर एक की वास्तविक सहायता करने में सक्षम हैं।" भक्तिवेदान्त स्वामी ने अपने लेख का अन्त यह कहकर किया कि अनैतिक व्यवहार भारत के देवालयों तक ही सीमित नहीं है, वरन् वे सारे संसार की भौतिकतावादी सभ्यताओं में समान रूप से व्याप्त है। विशेषकर युवा-वर्ग के विक्षोभों का उन्होंने उदाहरण दिया, जो १९६०-७० के बीच सर्वत्र व्यापक हो रहे थे।

> अच्छा होगा कि डॉक्टर पहले स्वयं अपनी दवा करें; क्योंकि नास्तिकतावादी

सभ्यता में जबकि मठों और मन्दिरों के पुजारी पंडित नेहरू के लिए सिर-दर्द बने हुए है, ऐसे ही लोग दूसरे नामों से योरप और एशिया के राज-नेताओं के सिर-दर्द के कारण हैं। उन देशों में बेलगाम छोकरे, जिन्हें इंगलैंड में "टेडी ब्यायज," अमेरिका में "रेबेल्स विदआउट काज," जर्मनी में "हाफ स्ट्रोंग," स्वेडन में "लेदर जैकेट्स," जापान में "चिल्डरेन आफ दि सन," और रूस में "स्टाइल ब्यायज" कहा जाता है, नास्तिकतावादी सभ्यता की ही उपज हैं। और सारे सिर-दर्द का मूल कारण यही है। उसका पूरा उपचार जरूरी है।

• • •

छिप्पीवाड़ा में भक्तिवेदान्त स्वामी की दिनचर्या लगभग वैसी ही थी, जैसी कि केशीघाट पर। अन्तर केवल यह था कि यहाँ *बैक टु गॉडहेड* के लिए लिखने-पढ़ने का कुछ काम कृष्णपंडित कर देते थे, इसलिए *श्रीमद्‌भागवत* को अधिक समय देने के लिए वे स्वतंत्र थे।

कृष्ण पंडित : *वे श्रीमद्‌भागवत का अनुवाद सूर्योदय के पूर्व लगभग ३ बजे से किया करते थे। आरम्भ में टाइपराइटर नहीं था, बाद में उन्होंने एक पोर्टेबल टाइपराइटर की व्यवस्था कर ली थी। वे नित्य प्रति यह कार्य करते; तब अपना भोजन स्वयं बनाते। भोजन की सामग्री मैं इकठ्ठी कर लेता था। कभी कभी वे मेरे परिवार में आते और मेरी पत्नी से कुछ भोजन माँगते। कभी कभी वे तीसरे पहर ५ या ६ बजे भी नहाते थे।*

हर दिन वे टाइप करते और भागवत का स्वयं कुछ पाठ करते और मन्दिर में दर्शन को जाते। तब वे बाहर चले जाते और कभी कभी तीसरे पहर २ या ४ बजे वापस लौटते। उसके बाद वे टाइप करते और बैक टु गॉडहेड के प्रूफ कहीं भेजते और उन्हें देखते। वे इस तरह सारा कार्य करते। उनका मुख्य कार्य दिनभर में कई घंटे टाइप करना था।

भक्तिवेदान्त स्वामी अनुवाद का कार्य श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती द्वारा संपादित एक संस्कृत और बँगला के भागवत तथा उसके एक बृहद् संस्करण से करते थे, जिसमें बारह महान् आचार्यों की मौलिक टीकाएँ थीं। उनके अनुवाद का एक मानक रूप था: वे देवनागरी में लिखित संस्कृत को रोमन अक्षरों में लिखते; तब हर शब्द का अँग्रेजी पर्याय देते; फिर अँग्रेजी में उसका गद्य अनुवाद करते, और अन्त में अँग्रेजी में श्लोक का तात्पर्य देते। परन्तु अपनी ओर से तात्पर्य देने के पहले वे आचार्यों की टीकाएँ देख लेते, विशेषकर श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती, विश्वनाथ चक्रवर्ती, जीव गोस्वामी, विजयध्वज तीर्थ और श्रीधर स्वामी की टीकाएँ।

जिस परियोजना में वे लगे थे, उसके आयाम का उन्होंने अनुमान लगाया। भागवत में अठारह हजार श्लोक थे। पहले स्कन्ध के सत्रह अध्याय प्रत्येक चार सौ पृष्ठ वाले तीन खंडों में आते थे। और दूसरे स्कन्ध के दस अध्यायों को दो खंड चाहिए थे। नवे स्कन्ध तक इस तरह हो सकता है, तीस खंड हो जाये। दसवें स्कन्ध में नब्बे अध्याय थे, उनके लिए वीस खंड चाहिए थे। सब मिलाकर बारह स्कन्ध थे और इस तरह कुल खंडो की संख्या कम से कम साठ होगी। उन्होंने सोचा कि वे इस कार्य को पाँच से सात वर्षों में पूरा कर लेंगे : "यदि भगवान् ने मुझे स्वस्थ रखा, तो मैं श्रील प्रभुपाद की इच्छा के अनुसार कार्य पूरा कर लूँगा।"

उन्होंने निर्णय लिया कि पहले खंड का आरम्भ भगवान् चैतन्य महाप्रभु के जीवन चरित के साथ किया जाये, "जो भागवत के आदर्श प्रचारक थे।" पाठक को भागवत को सर्वोत्तम रूप में परखने-सराहने का अवसर भगवान् चैतन्य के व्यावहारिक जीवन से मिलेगा। भगवान् चैतन्य ने भागवत को जिस रूप में प्रस्तुत किया था, उसकी विशेषता उनकी यह इच्छा थी कि "*श्रीमद्भागवत* का प्रचार भारत में जन्म लेने वाले हर व्यक्ति द्वारा संसार के हर कोने में किया जाये।" भगवान् चैतन्य *श्रीमद्भागवत* को "निर्मल पुराण" कहते थे और हरे कृष्ण मंत्र के साथ *श्रीमद्भागवत* के पठन और श्रवण को वे ईश्वर में सच्चे प्रेम का विकास करने के लिए पूर्ण वैज्ञानिक प्रक्रिया मानते थे।

भक्तिसिद्धान्त सरस्वती द्वारा संपादित चैतन्य-चरितामृत और चैतन्य-भागवत के भाष्य को आधार मानकर भक्तिवेदान्त स्वामी ने भगवान् चैतन्य के जीवन और उनके संकीर्तन आन्दोलन की रूपरेखा पचास पृष्ठों में दी। उन्होंने भगवान् चैतन्य की दिव्य भाव-समाधि का समकालीन विद्वानों से उनकी दार्शनिक टक्करों का, उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये संकीर्तन आन्दोलन का और पवित्र नाम के समूह गान का वर्णन किया। भक्तिवेदान्त स्वामी ने भगवान् चैतन्य के जीवन और उनकी शिक्षाओं को विशेष रूप से इतिहास की वर्तमान संकटापन्न घड़ी से जोड़ा। "आवश्यकता की इस निर्णायक घड़ी में" मानवता की सहायता वैदिक साहित्य, और विशेष रूप से *श्रीमद्भागवत* से हो सकती है :

> हम जानते हैं कि विदेशी आक्रमणकारियों ने भारत के कुछ विशाल वास्तुकलात्मक भवनों को ध्वस्त कर दिया, लेकिन वे संस्कृत भाषा में वैदिक ज्ञान के रूप में संरक्षित मानव-सभ्यता के श्रेष्ठ आदर्शों को नष्ट नहीं कर सके।

संस्कृत भाषा ने इन रहस्यों की रक्षा हजारों शताब्दियों तक की, लेकिन अब इन रहस्यों को संसार के लिए प्रकट कर देना आवश्यक था।

श्रीमद्भागवत के प्रारम्भिक श्लोकों के निकट पहुँचने पर भक्तिवेदान्त स्वामी भागवत के उद्देश्यों में खो गये। उन श्लोकों में बलपूर्वक कहा गया था कि केवल भागवत ही कलियुग के दुष्प्रभावों से समाज की रक्षा कर सकता है। इस युग के लिए श्रीमद्भागवत की संस्तुति यही है कि केवल सच्चे भक्तों के मुख से परम भगवान् कृष्ण का गुण-गान सुना जाये।

भागवत का प्रारम्भ आज से लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व, वर्तमान कलियुग के प्रारम्भ में नैमिषारण्य में संतों के समागम से हुआ। मानवता के पतन का पूर्वाभास होने पर संतों ने सभा के वरिष्ठ सदस्य, सूत गोस्वामी से पूछा, "अब, जबकि भगवान् कृष्ण, जो सभी धार्मिक सिद्धान्तों के शरण-स्थल है, अपने आध्यात्मिक लोक को चले गये हैं, धार्मिक सिद्धान्त कहाँ से प्राप्त होंगे?" सूतजी का उत्तर था कि *श्रीमद्भागवत* पुराण "जो सूर्य के समान देदीप्यमान है," भगवान् का साहित्यिक अवतार है और वही कलियुग के घने अंधकार में खोए मनुष्यों को दिशा-बोध कराएगा।

श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ में श्रील व्यासदेव अपने आध्यात्मिक गुरु नारद मुनि के आदेशानुसार ध्यान-मग्न होकर बैठ गये। समाधि की दशा में उन्होंने परम भगवान्, उनकी शक्तियों और कलियुग के दुख भोगते आत्माओं को देखा। उन्होंने यह भी देखा कि उनके दुख की औषधि विशुद्ध भक्ति है। ऐसी अन्तर्दृष्टि प्राप्त करके और अपने आध्यात्मिक गुरु के आदेशों को प्रेरणा मानकर, व्यासदेव ने, कलियुग के दुख भोगते आत्माओं को सर्वश्रेष्ठ लाभ पहुँचाने के लिए *श्रीमद्भागवत* की रचना आरम्भ की।

भगवान् के साहित्यिक अवतार *श्रीमद्भागवत* को पाश्चात्य संसार के लिए प्रस्तुत करते हुए भक्तिवेदान्त स्वामी को ऐसा अनुभव हुआ कि वे श्रील व्यासदेव के चरण-चिह्नों पर चलकर एक बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे थे। जिस प्रकार श्रील व्यास देव को कृष्ण की अन्तर्दृष्टि प्राप्त हुई थी और अपने साहित्यिक अभियान के पूर्व उन्हें अपने आध्यात्मिक गुरु से आदेश मिला था, उसी प्रकार भक्तिवेदान्त स्वामी को भी अन्तर्दृष्टि प्राप्त हुई और अपने आध्यात्मिक गुरु से आदेश मिला। भक्तिवेदान्त स्वामी को दिखाई दिया कि मानो वे श्रील वेदव्यास का ग्रंथ बहुत बड़ी संख्या में वितरित कर रहे हैं। वे न केवल पुस्तक का अनुवाद करेंगे, वे स्वयं उसे पश्चिम में ले जायेंगे, बाँटेंगे और वहाँ के लोगों को सिखाएँगे—पुस्तक के माध्यम से और व्यक्तिगत रूप में भी—कि भगवान् का सच्चा प्रेम कैसे विकसित किया जा सकता है।

श्रील प्रभुपाद : *साम्यवादी दल केवल अपना साहित्य वितरित करके जन-प्रिय हो गया है। कलकत्ता में साम्यवादी एजेंट मित्रों को आमंत्रित करते हैं और अपना साहित्य पढ़कर उन्हें सुनाते हैं। रूसी भारत में कभी नहीं आये, लेकिन हर भाषा में अपना साहित्य*

वितरित करके उन्होंने बहुत बड़ी संख्या में लोगों को अपना अनुयायी बना लिया है। यदि सामान्य, तीसरे दर्जे का लौकिक साहित्य ऐसा कर सकता है, तो दिव्य साहित्य सारे संसार में अपने भक्त क्यों नहीं पैदा कर सकता? ऐसे साहित्य का गाँव-गाँव में जोरदार प्रचार करने की बहुत जरूरत है। भागवत धर्म मानव समाज का आदि धर्म है। धर्म के नाम से जिस किसी भी चीज का चलन दिखाई देता है, वह सब वैदिक साहित्य से आया है। लोग वैदिक साहित्य पर आधारित पुस्तकें चाहते हैं। वे उनके लिए तड़प रहे हैं। भगवान् चैतन्य ने कहा था कि संसार के हर नगर और हर गाँव में संकीर्तन आन्दोलन के सन्देश से लोग अवगत होंगे। इसका तात्पर्य यह है कि संसार के प्रत्येक गाँव और नगर में ऐसे लोग हैं, जो इस सन्देश की प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह साहित्य दिव्य है। उसे कोई चुनौती नहीं दे सकता। इसकी रचना इतनी सुन्दर है कि उसमें कोई दोष नहीं है; वह निर्दोष पुराण है।

भक्तिवेदान्त स्वामी ने अपना सारा विश्वास *श्रीमद्भागवत* में केन्द्रित कर दिया और प्रचार के अन्य प्रकार के सभी कार्यों को लगभग छोड़ दिया। और उनके आध्यात्मिक गुरु और भगवान् चैतन्य का यही उपदेश था, यही दृष्टान्त था। उनकी रुचि बहुत लागत वाले मन्दिरों के निर्माण या बहुत से नये शिष्य पैदा करने में नहीं थी। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ने प्रचार पर बल दिया था। प्रचार के लिए ग्रंथ चाहिए थे और सर्वोत्तम ग्रंथ था *श्रीमद्भागवत*। सामान्य जनता के ज्ञान के लिए भागवत की रचना करना और छापना भगवान् की सच्ची सेवा थी। यह श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती का मत था। मन्दिरों के निर्माण की तुलना में उन्हें पुस्तकें प्रकाशित करना अधिक पसन्द था और उन्होंने अपने शिष्यों को विशेष रूप से कहा था कि वे पुस्तकें लिखें। पुस्तकें लिखना, उन्हें प्रकाशित करना और दूर दूर तक वितरित करना उन्नत, शक्तिप्रदत्त भक्तों का काम था। हर जगह दिव्य साहित्य-वितरण के कार्यक्रम से (जिसमें साम्यवादियों से भी अधिक विशेषज्ञ लगे हों) अमेरिका और योरप के लोगों पर गहरा अनुकूल प्रभाव पैदा किया जा सकता था। और यदि अमेरिका और योरप के लोग कृष्णभावनामृत की ओर उन्मुख हो गये, तो शेष संसार के लोग उनका अनुकरण करेंगे। भक्तिवेदान्त स्वामी छिप्पीवाड़ा में अपने कमरे में बैठे अकेले कार्य में लगे रहे। वे इस विचार में खोए रहते कि कृष्ण के सन्देश को उन्हें इतने बड़े पैमाने पर फैलाना था, जितने के लिए पहले कभी प्रयास नहीं किया गया था।

वे कभी-कभी इस सोच में पड़ जाते कि पश्चिम के लोग, जो वैदिक संस्कृति से इतने दूर हैं, कृष्ण के सन्देश को कैसे अपनाएंगे। वे मांसभक्षी थे, म्लेच्छ थे। भक्तिवेदान्त स्वामी के एक गुरुभाई जब इंगलैंड गये थे, तो मारक्विस आफ जेटलैंड, उनसे पापकर्ममय जीवन से बचने के लिए चार निषेधों को सुनकर, "असम्भव" कहते हुए तिरस्कारात्मक हँसी हँस पड़े थे। किन्तु *श्रीमद्भागवत* की अपनी बात थी।

"परम भगवान् श्रीकृष्ण, जो सबके हृदय में वास करने वाले परमात्मा, और सच्चे भक्तों के कल्याणकर्ता भी हैं, अपने उन भक्तों के मन से भौतिक भोग-विलास की वासना दूर कर देते हैं, जिन्होंने उनके सन्देशों को सुनने की इच्छा विकसित कर ली है, जो समुचित रूप से कहने और सुनने में स्वयं नैतिकता से भरे हैं।"

यद्यपि भक्तिवेदान्त स्वामी की ख्याति अँग्रेजी में प्रचार करने वाले के रूप में थी, किन्तु वे जानते थे कि उस विदेशी भाषा में उनकी प्रस्तुति में दोष हमेशा रहते थे; और उन्हें दूर करने वाला कोई संशोधक सम्पादक नहीं था। लेकिन ऐसे तकनीकी दोषों के कारण वे *श्रीमद्भागवत* के मुद्रण से विरत नहीं हो सकते थे। भागवत् के आरम्भ के अध्यायों में उन्होंने यह बात कह भी दी थी। "जो साहित्य असीम अनन्त भगवान् के नाम, यश, रूपों और लीलाओं के दिव्य वैभवों के वर्णनों से भरा है, वह दिव्य शब्दावली की एक अलग ही सृष्टि है। जिसका उद्देश्य संसार की दिग्भ्रमित सभ्यता के कलुषपूर्ण जीवन में क्रान्ति घटित करना है। ऐसे दिव्य साहित्य को, चाहे उसकी रचना अव्यवस्थित रूप में हुई हो, पवित्र-आत्मा वाले मनुष्य, जो सम्पूर्ण रूप से सत्यनिष्ठ हैं, सुनते हैं, पढ़ते हैं और स्वीकार करते हैं।"

अपने तात्पर्य में भक्तिवेदान्त स्वामी ने लिखा "हम जानते हैं कि संसार के वातावरण को पुनः आध्यात्मिकता से भरने के नाम पर जन-सामान्य में भगवान् की चेतना को पुनर्जागरित करने वाले दिव्य सन्देश के वाहक इस महान् साहित्य को प्रस्तुत करने का हमारा सच्चा प्रयत्न बहुत सी कठिनाइयों से भरा है... विषयवस्तु को समुचित भाषा में, विशेषकर एक विदेशी भाषा में प्रस्तुत करने में हम अवश्य असमर्थ सिद्ध होंगे और विषयवस्तु को सही रूप में प्रस्तुत करने का हम चाहे कितना भी प्रयत्न करें, हमसे बहुत-सी साहित्यिक भूलें होंगी। लेकिन हमें विश्वास है कि इस सम्बन्ध में हमारी सारी भूलों के बावजूद विषयवस्तु की गम्भीरता पर लोगों का ध्यान जायेगा और समाज के नेता उसे स्वीकार करेंगे, क्योंकि वह सर्वशक्तिमान भगवान् के यश-गान का सच्चा प्रयत्न है, जिसकी इस समय इतनी घोर आवश्यकता है। जब घर में आग लगी हो, तो घर के निवासी पड़ोसियों से सहायता माँगने जाते हैं, चाहे वे पड़ोसी बिल्कुल विदेशी भी हों; तो भी बिना समुचित भाषा के आग का शिकार बने घर वाले अपनी आवश्यकता पड़ोसियों को बताते हैं और अपूर्ण रूप से भी कही गई उनकी बात को पड़ोसी समझ जाते हैं। संसार की वर्तमान स्थिति के पूर्णतया दूषित वातावरण में *श्रीमद्भागवत* के दिव्य सन्देश के प्रसारण के लिए ऐसी ही सहयोग-भावना अपेक्षित है। कुछ भी हो, *श्रीमद्भागवत* आध्यात्मिक मूल्यों का प्राविधिक विज्ञान है और इसलिए हमारा सम्बन्ध, विशेष रूप से उसकी प्रविधि से है, न कि भाषा से। यदि इस महान् साहित्य की प्रविधि को संसार के लोग समझ लें,

तो हमें सफलता मिल जाएगी।"

सचमुच कलियुग आपात स्थिति थी—घर में आग लगी थी। जो सच्चे लोग थे और समय की आवश्यकता को समझते थे, उनके लिए *श्रीमद्‌भागवत* स्वागत-योग्य ग्रन्थ था, यद्यपि उसका अँग्रजी-रूपान्तरण "भाषागत अनेक त्रुटियों से भरा था।" भक्तिवेदान्त स्वामी *श्रीमद्‌भागवत* को जैसा-का-वैसा प्रस्तुत कर रहे थे। श्रील व्यासदेव के प्रति उनके मन में अत्यधिक सम्मान था। और यही उनका आधारभूत गुण था। वे अपनी स्वयं की अनुभूतियों को जोड़ रहे थे, लेकिन पूर्वगामी आध्यात्मिक गुरुओं से आगे निकलने की भावना से नहीं। नितान्त 'परम्परा' के अनुसार विषयवस्तु को प्रस्तुत करने की जो सर्व महत्त्वपूर्ण बात थी, उसमें भक्तिवेदान्त स्वामी को कोई भी कठिनाई "त्रुटिपूर्ण, अपूर्ण भाषिक प्रविधियों" के कारण नहीं हुई। वे जानते थे कि 'परम्परा' के बिना भागवत के तात्पर्यों का कोई मूल्य नहीं होगा। डेस्क के सामने बैठे वे दिन-रात टाइप करने में लगे रहते और छत से लटकते तार में बंधे छोटे लैम्प को जरूरत के अनुसार घुमा-फिरा लेते। वे एक पतली चटाई पर बैठते थे और उनकी पीठ पिरामिड की ओर होती थी, जो उस साज-सज्जा-हीन कमरे में सीधा खड़ा था। पन्ने पर पन्ने इकट्ठे होते जाते थे और पत्थरों से दबाकर वे उन्हें अपनी जगह पर रखते जाते। भोजन और निद्रा—यद्यपि दोनों आवश्यक थे—उनके लिए आकस्मिक थे। उन्हें पूरा विश्वास हो गया था कि उनका *श्रीमद्‌भागवत* दिग्भ्रमित सभ्यता में क्रान्ति उत्पन्न कर देगा। इस प्रकार वे अत्यन्त सावधानी और ध्यान से हर शब्द का अनुवाद करते और तात्पर्य लिखते। किन्तु कार्य जितनी शीघ्रता से हो सके पूरा होना था।

• • •

सन् १९६१ ई. की फरवरी में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती की जन्म-जयन्ती, व्यास-पूजा के दिन भक्तिवेदान्त स्वामी फिर वृन्दावन लौटे। श्रील भक्तिसिद्धान्त के कुछ शिष्य उनके सम्मान में उस दिन एकत्रित हुए थे। उन्होंने उनके चित्र को पुष्प अर्पित किये थे और मन्दिर में सामुदायिक कीर्तन किया था। लेकिन भक्तिवेदान्त स्वामी का विचार था कि उन्हें उससे भी अधिक कुछ और करना चाहिए था। उन्हें विश्वव्यापी प्रचार आन्दोलन की योजनाएँ बनानी और उनको कार्यान्वित करना चाहिए, जैसी कि भक्तिसिद्धान्त सरस्वती की इच्छा थी। उसके स्थान पर वे स्वंतत्र व्यक्तियों की भाँति इकठ्ठे हुए थे। उनमें हर एक का अपना छोटा-मोटा विचार था; हर एक अलग केन्द्र में रहता था, या अपना अलग केन्द्र चला रहा था। किसी के पास विश्वव्यापी कार्यक्रम न था, यहाँ तक कि अखिल देशव्यापी कार्यक्रम भी न था। अपना जीवन-यापन करने के अतिरिक्त उनमें से अधिकतर के पास न

कोई योजनाएँ थीं और न ही दूर-दृष्टि। भक्तिवेदान्त स्वामी चाहते थे कि उनके आन्दोलन का संचालन करने के लिए कोई शासी-मण्डल हो, किन्तु शासी-मण्डल जैसी कोई चीज नहीं थी और यहाँ तक कि आन्दोलन जैसी कोई चीज भी नहीं थी। जिन लोगों में पहले घोर संघर्ष हुए थे, अब उनमें बातचीत शुरू हो गई थी। उन्हें डर था कि अचानक संस्थागत प्रयत्नों की बात होने पर ऐसा न हो कि उनके बीच के पुराने विद्वेष फिर जाग उठें। अभी इतना तो था कि कम से कम वे एक स्थान पर एकत्रित हो गये थे और अपने आध्यात्मिक गुरु को एक साथ श्रद्धा-सम्मान अर्पण कर रहे थे।

अपने गुरुभाइयों के बीच भक्तिवेदान्त स्वामी एक कनिष्ठ संन्यासी थे। यद्यपि लेखक और सम्पादक के रूप में वे मान्य थे, लेकिन उनका कोई मन्दिर या कोई अनुयायी नहीं था। तब भी वे जानते थे कि वे भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के अनुगमन का प्रयत्न कर रहे थे। माया की विशाल शक्तियों के विरुद्ध उन्होंने अपने को असहाय और अकेला पाया। उनके गुरुभाई माया की इन शक्तियों के विरुद्ध एक संयुक्त सेना जैसे नहीं थे, वरन् वे विरक्त मठवासियों जैसे थे, जो धार्मिक सिद्धान्तों और कर्मकाण्डों में लगे हुए धीरे धीरे बूढ़े हो रहे थे और जीवन-शक्ति से हीन हो रहे थे। एक जगह इकठ्ठे होकर वे अपने आध्यात्मिक गुरु की आराधना कैसे कर सकते थे, जब तक वे शोकपूर्ण मन से अपनी असफलता को अंगीकार न करें और "कभी नहीं से अच्छा, देर से ही सही" के भाव से अपनी भूलों को सुधारने के लिए तैयार न हो जायें?

यह नियम था कि व्यास-पूजा के दिन हर शिष्य अपने आध्यात्मिक गुरु का महत्त्व दर्शाने वाली एक प्रशस्ति लिखे और गुरुभाइयों की सभा में उसे सुनाए। भक्तिवेदान्त स्वामी ने भी एक प्रशस्ति लिखी—जो प्रशंसा की अपेक्षा विस्फोट से अधिक भरी थी। अपने गुरुभाइयों की प्रतिक्रिया जानने के लिए उन्होंने उसे उनके सामने विनम्र भाव से प्रस्तुत किया।

> अब भी, मेरे गुरुभाइयों, गुरु के आदेश पर आप यहाँ एकत्र होते हैं और एक साथ उनकी पूजा करते हैं।
>
> किन्तु पुष्पों तथा फलों के उत्सव मात्र से पूजा नहीं होती। जो गुरु के सन्देश का वाहक होता है, सच्चा पुजारी वही है।
>
> कितनी लज्जा की बात है, मेरे बंधुओ, जिस व्यापारी ढंग से आप शिष्य-समुदाय बढ़ाते हैं! क्या उससे आपको घबराहट नहीं होती?
>
> हमारे गुरु का आदेश था—प्रचार करो! नये शिष्यों को मन्दिरों में रहने दो और उन्हें केवल घंटियाँ बजाने दो।...

> किन्तु जो भयानक परिस्थिति उत्पन्न हो गई है, उस पर ध्यान से दृष्टिपात करो। हर एक इन्द्रिय-सुख में लीन हो गया है और हर एक ने प्रचार-कार्य छोड़ दिया है...
>
> सागर-पृथ्वी के आरपार, ब्रह्माण्ड को भेदकर एक हो जाओ और इस कृष्णभावनामृत का प्रचार करो।
>
> तभी हमारे आध्यात्मिक गुरु की उपयुक्त सेवा होगी। आज वचन दो, राजनीति, कूटनीति का त्याग करो।

यदि भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के शिष्य एक-जुट होकर प्रचार-कार्य में लग जाएं, तो इस बात की पूरी सम्भावना थी कि वे इस पापमय संसार में आध्यात्मिक क्रान्ति ले आते। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती को ऐसी ही आशा थी और भक्तिवेदान्त स्वामी ने उस आशा को व्यास-पूजा की अपनी प्रशस्ति में अभिव्यक्त किया।

> वह दिन कब आयेगा जब एक मन्दिर की स्थापना होगी हर घर में, दुनिया के हर कोने में?
>
> कब उच्च न्यायालय का न्यायाधीश एक गौड़ीय वैष्णव होगा सुन्दर तिलक से सुशोभित ललाट वाला?
>
> कब वैष्णव मतों के बल पर देश का निर्वाचित राष्ट्रपति बनेगा और प्रचार फैलेगा चारों ओर?

जब वे कविता पढ़ रहे थे और वयोवृद्ध संन्यासियों की उस सभा में उसके सत्य का उद्‌घाटन हो रहा था, तो कुछ ने तो उसका समर्थन किया और कुछ क्रुद्ध हो उठे। लेकिन उस सभा में कोई नया निर्णय नहीं हुआ; एक साथ बैठकर कोई नयी योजना नहीं बनाई गई, जैसाकि भक्तिवेदान्त स्वामी का आग्रह था। स्वामी महाराज की कविता को केवल भावात्मक अभिव्यक्ति या उनके मत के रूप में ग्रहण किया गया। गुरुभाई इस मत के थे कि समय के साथ पुराने घावों को भरने दिया जाये। पुराने मामलों को फिर उठाना, मिशन को पुन: उस रूप में संगठित करना, जैसाकि वह श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के समय में था, और उन सभी महत्त्वाकांक्षा-पूर्ण कार्यक्रमों को चलाने का प्रयत्न करना—यह सब कैसे सम्भव था? वे सब वृद्ध हो रहे थे। कुछ वृन्दावन की शरण से बाहर नहीं जाना चाहते थे। वे उस पवित्र धाम में ही भक्तिसिद्धान्त सरस्वती की आराधना करना चाहते थे। यदि भक्तिवेदान्त स्वामी कुछ और करना चाहते थे, तो वे आगे बढ़ें और प्रयास करें।

विचार से भरे भक्तिवेदान्त स्वामी केशीघाट लौटे। पारिवारिक प्रतिबद्धताओं के कारण वे कई वर्षों से मिशन के कार्यकलापों में महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं निभा सके थे। सन् १९३५ में बम्बई में उनके गुरुभाइयों ने उनसे मठ का अध्यक्ष बनने को कहा था, लेकिन भक्तिसिद्धान्त सरस्वती का कहना था कि यह जरूरी नहीं कि अभयचरण दे उनके साथ सम्मिलित हों; उन्हें अपने ढंग से उसमें आने देना चाहिए। अब अपने आध्यात्मिक गुरु के अनुग्रह से वे संन्यास को यथार्थ करने को तैयार थे। जिस कृष्णभावनामृत से पूर्ण विश्व का वर्णन उन्होंने अपनी कविता में किया था, वह कल्पनालोक की वस्तु नहीं थी, जो उनके गुरुभाइयों को केवल उकसाने के लिए कही गई हो या जो किसी स्वप्नदर्शी की असम्भव वार्ता हो। उनका वर्णन सर्वथा व्यावहारिक था। लेकिन जो भी हो, उन्हें तो कृष्णभावनामृत के विषय में लिखना और किताबें छापना था और विदेशों में उसका प्रचार करना था। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती यही चाहते थे। यदि उनके गुरुभाई मिल-जुलकर इसे नहीं कर सकते, तो वे उसे अकेले करेंगे।

• • •

जनवरी १९६१ ई. में भक्तिवेदान्त स्वामी के दिल्ली-निवासी एक परिचित ने १० मई से २० मई तक टोकियो में होने वाले "कांग्रेस फार कल्टीवेटिंग ह्यूमन स्पिरिट" के अधिवेशन का घोषणा-पत्र उन्हें दिखाया था। अधिवेशन में मुख्य विचारणीय विषय मानवीयता के द्वारा विश्व-शान्ति की स्थापना था। उसमें सम्मिलित होने के लिए कई देशों के लोग आमंत्रित थे। घोषणा-पत्र देखने के साथ भक्तिवेदान्त स्वामी के मन में टोकियो जाने का विचार आया था। यद्यपि उनकी मुख्य अभिरुचि सदा संयुक्त राज्य अमेरिका में थी, लेकिन यदि जापान जाने का अवसर पहले मिले, तो वहाँ क्यों न जाया जाये? और आमंत्रण-पत्र भी अँग्रेजी में था। यदि उन्हें आरक्षण मिल जाता है, तो अधिवेशन में होटल में रहने और खाने का खर्च वे देंगे। किन्तु यात्रा का व्यय उन्हें स्वयं वहन करना था।

भक्तिवेदान्त स्वामी ने "इंटरनेशनल फाउन्डेशन फार कल्चरल हारमोनी" (सांस्कृतिक सामंजस्य के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संस्था) के संस्थापकों को लिखा और "मानवीयता का विकास कैसे करना चाहिए" विषय पर भाषण देने का प्रस्ताव किया। संस्था के प्रधान सचिव श्रीमान् तोशीहिरो नकानो ने केशीघाट के पते पर उन्हें उत्तर भेजा। उन्होंने भारत की आध्यात्मिक संस्कृति और भक्तिवेदान्त स्वामी द्वारा प्रस्तावित विषय के सम्बन्ध में बड़ा सम्मान प्रकट किया। श्रीमान् नकानो ने एक आधिकारिक प्रमाण-पत्र संलग्न किया, जिसके लिए भक्तिवेदान्त स्वामी ने प्रार्थना की थी। उसमें लिखा था कि भक्तिसिद्धान्त स्वामी अधिवेशन में एक अधिकृत समभागी होंगे और जापान में उनका सारा

व्यय अधिवेशन द्वारा वहन किया जायेगा। "सभी सम्बन्धित लोगों से" यह भी प्रार्थना की गई थी कि उन्हें पारपत्र और प्रवेश-पत्र समय से दिये जायें, ताकि वे जापान में १० मई तक पहुँच सकें।"

तब भक्तिवेदान्त स्वामी के मन में अधिवेशन के लिए एक विशेष योजना का विचार पैदा हुआ। *श्रीमद्भागवत* के दसवें स्कन्ध के बीसवें अध्याय में वृन्दावन में शरद्-ऋतु का वर्णन आता है। भागवत वृन्दावन की हर ऋतु के समानान्तर वैदिक शिक्षा का वर्णन करता है। उदाहरण के लिए वह शरद्-ऋतु की वर्षा वाली मेघाच्छादित काली संध्या की तुलना आधुनिक कलियुग से करता है, जब वैदिक ज्ञान के चमकते तारे (संत-महात्मा और धार्मिक ग्रंथ) नास्तिकतावादी सभ्यता के अंधकार से थोड़े समय के लिए ढँक जाते हैं। इस अध्याय में इस तरह के दर्जनों उदाहरण हैं। भक्तिवेदान्त स्वामी ने प्रस्ताव किया कि ऐसे पचास उदाहरणों के चित्र बनाएँ जायें; हर चित्र की उनके द्वारा लिखित व्याख्या हो और चित्रों को अधिवेशन में प्रदर्शित किया जाये। उन्होंने व्याख्याएँ लिखना आरम्भ कर दिया और उनका शीर्षक "भागवत का प्रकाश" (दि लाइट आफ भागवत) रखा। चित्र बनाने वाले कलाकार के लिए हर उपदेश के अनुसार एक चित्र बनाने के लिए वे निर्देश लिखते गये। उन्हें लगा कि उन पचास चित्रों और उनकी व्याख्याओं के प्रदर्शन से अधिवेशन में आये दर्शकों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा। अधिवेशन के संगठनकर्ताओं को उनका यह विचार पसन्द आया।

> जहाँ तक आपका यह प्रस्ताव है कि आपके निर्देशानुसार आपकी व्याख्याओं पर चित्र बनवाएं जायें, तो आपकी व्याख्याओं के कुछ नमूने प्राप्त होते ही कलाकारों की नियुक्ति के बारे में हम विचार आरम्भ कर देंगे। इसलिए हमें यथाशीघ्र आपके निर्देश प्राप्त हो जाने चाहिए।

भक्तिवेदान्त स्वामी तेजी से कार्य करने लगे। उन्होंने बीस हजार शब्दों की पाण्डुलिपि तैयार की—पचास 'पाठ', पचास चित्रों के लिए। चित्रों में वर्षाकाल में वृन्दावन के वनों, खेतों और आसमानों का चित्रण होना था। पाठों में यत्रतत्र नास्तिकतावादी सरकारों की, भौतिकतावादियों की और झूठे धर्मानुयायियों की आलोचनाएँ थीं। कहीं-कहीं उनमें नैतिक सिद्धान्तों और भगवत्-चेतना का वर्णन था और कहीं-कहीं भगवान् कृष्ण और वृन्दावन में उनके शाश्वत सहचारियों के विषय में उल्लेख थे।

भक्तिवेदान्त स्वामी और जापान में अधिवेशन के संस्थापकों के बीच सभी कार्य ठीक चला। भक्तिवेदान्त स्वामी की समस्या यात्रा के लिए किराया जुटाने की थी। उन्होंने सभी

सम्भव स्रोत आजमाए। केन्द्रीय सरकार के वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक मामलों के मंत्रालय को पत्र लिखते हुए उन्होंने श्रीमान् नकानो का प्रमाण-पत्र संलग्न किया और एक संन्यासी के रूप में अपनी स्थिति स्पष्ट की। देर मार्च में उन्हें एक प्रपत्र भरकर लौटाने के लिए प्राप्त हुआ। समय थोड़ा रह गया था। २९ मार्च को उन्होंने उपराष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन को, जिनसे उनकी कुछ जान-पहचान थी (और दार्शनिक मत-भेद था) एक पत्र लिखा।

> आप जानते हैं कि मैं एक संन्यासी हूँ और बैंक से मेरा कुछ लेना-देना नहीं है। न किसी अन्य वित्तीय संस्थान से मेरा कोई रिश्ता है। किन्तु जापानी संस्थापकों को मेरा साहित्य पसन्द आया है और वे चाहते हैं कि मैं वहाँ पहुँचू।

उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया कि चूँकि प्राचीनकाल में भारत के महान् आचार्य अपने ज्ञान का प्रसार संसार के कल्याण के लिए करते रहे, इसलिए आज की भारत सरकार को भी चाहिए कि उन आचार्यों के प्रतिनिधियों को "आत्मा का सन्देश देने के लिए" भेजे। उन्होंने बम्बई में सिन्धिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी के उपप्रबन्धक को भी लिखा और उन्हें स्मरण कराया कि १९५८ ई. में संयुक्त राज्य अमेरिका की यात्रा के किराये में वे उन्हें पचास प्रतिशत छूट देने को तैयार थे। जापान के श्रीमान् नकानो के आमंत्रण के बारे में बताने के बाद भक्तिवेदान्त स्वामी ने लिखा कि जापान जाने-आने का पूरा किराया अमेरिका के आधे किराये से भी कम होगा।

अधिवेशन के लिए डेढ़ महीने से भी कम रह गया था। सभी सम्भावनाओं पर एक साथ सोचते हुए उन्होंने एक दूसरे संभाव्य अनुदानकर्ता श्रीमान् व्रजरतन एस. मोहता को लिखा, जिन्होंने कभी भक्तिवेदान्त स्वामी को दक्षिण अमेरिका भेजने की तत्परता दिखाई थी, जब वहाँ के एक भारतीय ने आध्यात्मिक विषयों में रुचि प्रकट करते हुए लिखा था। उस समय भक्तिवेदान्त स्वामी को भारत सरकार से समुचित प्रमाण-पत्र प्राप्त नहीं हो सका था। किन्तु अब उन्होंने लिखा कि इस समय रुचि रखने वाले लोगों की अन्तर्राष्ट्रीय सभा में वैदिक साहित्य के सन्देश को प्रस्तुत करने का नया अवसर था और जापान की यात्रा की टिकट भी दक्षिण अमेरिका की टिकट से कम थी। जिस दिन उन्होंने श्रीमान् मोहता को लिखा, उसी दिन उन्होंने वैज्ञानिक अनुसंधान मंत्रालय को प्रपत्र पूरा करके भेजा। इस प्रश्न के उत्तर में कि वे अनुदान क्यों मांग रहे थे और क्या पहले भी उन्होंने कभी अनुदान माँगा था, उन्होंने लिखा :

> इसके पूर्व मैंने मंत्रालय से वित्तीय सहायता कभी नहीं चाही, क्योंकि इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी। एक संन्यासी के रूप में मैं वित्तीय सहायता तभी माँग सकता हूँ, जब मुझे उसकी अनिवार्य आवश्यकता हो। हमारा जीवन इस बात के लिए समर्पित है कि हम प्रसुप्त आध्यात्मिक चेतना को जागरित करके समस्त मानवता की सेवा करें।

इस बीच वे जापान के पूरे सहयोग से अन्य सारे प्रबन्ध करते रहे। 'भागवत प्रकाश' के पहले बीस सोदाहरण विचार चित्रण के लिए उन्होंने श्रीमान् नकानो को भेज दिए थे। उन्होंने लिखा कि "जापान कलात्मक कार्यों के लिए प्रसिद्ध है और भारत अपनी आध्यात्मिक संस्कृति के लिए विख्यात है। हमें अब एकजुट हो जाना चाहिए. . .।" उन्होंने सुझाव दिया कि विचारों और चित्रों को पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित किया जाये।

श्रीमान् नकानो ने भक्तिवेदान्त स्वामी को विश्वास दिलाते हुए लिखा कि वे सब हनेडा हवाई अड्डे पर उनकी प्रतीक्षा में रहेंगे। उन लोगों को पहचानना आसान होगा, क्योंकि वे एक पताका लिए होंगे और यदि भक्तिवेदान्त स्वामी चाहें तो वे जापान में एक पूरे महीने तक रह सकेंगे और नियुक्त अधिवेशन के बाद स्थानीय सभाएं कर सकेंगे। श्रीमान् नकानो ने भक्तिवेदान्त स्वामी से एक प्रार्थना और की। वह यह थी कि वे जापान के तीन नगरों के मेयरों से सम्बन्ध दृढ़ बनाने के लिए उन्हें लिखें कि आध्यात्मिक अधिवेशन को वे पूरा सहयोग दें। भक्तिवेदान्त स्वामी ने यह कार्य तुरन्त किया।

लेकिन अब अप्रैल आ गया था और धन कहीं से नहीं आया था। अन्त में डॉ. राधाकृष्णन से व्यक्तिगत रूप में मिलने और उनसे कोरा नकारात्मक उत्तर पाने के पश्चात् भक्तिवेदान्त स्वामी निराश होकर श्रीमान् नकानो की ओर मुड़े। १८ अप्रैल को उन्होंने लिखा :

> आपका दिनांक ९ अप्रैल का पत्र प्राप्त हुआ। जो कुछ आपने मेरे प्रति लिखा है, उसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। मैं एक दीन-हीन प्राणी हूँ और इस सम्बन्ध में जो कुछ सेवा मुझसे हो सकती है, उसे करने की कोशिश कर रहा हूँ, क्योंकि मेरे आध्यात्मिक गुरु श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज का यही आदेश था. . .
>
> मेरे स्वागत की जो व्यवस्था आप कर रहे हैं, उसे जानकर मुझे अतीव प्रसन्नता है, लेकिन आपको मेरी यह विनम्र सूचना है कि मेरी यात्रा के किराये का जो लगभग ३५००/- रुपए है, मामला अभी तक तय नहीं हुआ है। मैंने सहायता के

लिए भारत सरकार को एक आवेदन-पत्र भेजा था, उसकी प्रतिलिपि भी संलग्न है। मैंने डॉ. एस. राधाकृष्णन को एक व्यक्तिगत पत्र भी इस सम्बन्ध में लिखा था और जो उत्तर मुझे मिला, वह भी यहाँ संलग्न कर रहा हूँ।

यह सब कुछ मेरे लिए उत्साहवर्धक नहीं है। इसलिए आज मैं उपराष्ट्रपतिजी से स्वयं मिला। लेकिन उन्होंने वही कहा, जो वे पत्र में लिख चुके थे। यद्यपि मैं अभी एकदम निराश नहीं हूँ, लेकिन मुझे यह सोचकर चिंता अवश्य है कि यदि सरकार ने सहायता देने से इनकार कर दिया तो मैं क्या करूँगा। इसलिए इस सम्बन्ध में मैं आपका सत्परामर्श चाहता हूँ। डॉ. एस. राधाकृष्णन ने मुझे बताया कि अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए आपने उन्हें भी आमंत्रित किया था और उनका ऐसा मत है कि मेरा यात्रा-व्यय शायद आपकी ओर से दिया गया हो।

अधिवेशन से आशा और अपेक्षा निस्सन्देह बहुत बड़ी है और मेरी ऐसी अभिलाषा है कि इस अवसर का पूरा उपयोग मैं अखिल मानव-समाज के सामान्य कल्याण के लिए कर सकूँ। मैंने अपने विचारों को पूरी तरह से उन वक्तव्यों में अभिव्यक्त किया है, जो मैं आपके पास प्रकाशनार्थ भेज चुका हूँ। उन विचारों का सारांश मैंने मेयरों को भेजे गये पत्र में भी दे दिया है, जिसकी प्रतिलिपि भी यहाँ संलग्न है।

संन्यासी होने के नाते मेरे पास खर्च के लिए धन नहीं है। ऐसी परिस्थिति में यदि सरकार ने यात्रा-व्यय देने से इनकार किया, तो उसके लिए मुझे आपसे प्रार्थना करनी पड़ेगी, अन्यथा अधिवेशन में सम्मिलित होना मेरे लिए एक सपना बनकर रह जायेगा। राज-नेताओं के व्यवहार में मेरा विश्वास नहीं है, विशेषकर भारतीय राज-नेताओं के व्यवहार में।

डॉ. एस. राधाकृष्णन की बात से मुझे ऐसा लगा कि सरकार ऐसे अधिवेशनों का अनुमोदन नहीं करती, जिनका संगठन लोग निजी तौर पर करते हैं और इसलिए सरकार ऐसे अधिवेशन में भाग नहीं लेती। मैं अन्तिम निर्णय के लिए एक सप्ताह तक और प्रतीक्षा करूँगा—जब हाँ या न के रूप में मामला साफ हो जायेगा।

भारत में जिन लोगों से सहायता मिल सकती थी, उनकी ओर से इनकार आ गया। २० अप्रैल को भक्तिवेदान्त स्वामी ने श्रीमान् नकानो को तार भेजा।

चूँकि आपका मुझसे गहरा प्रेम हो गया है, इसलिए मैं आपको लिखने का

> साहस कर रहा हूँ कि जापान पहुँचने के लिए मेरी वित्तीय सहायता कीजिए। मेरे विचार से आप दिल्ली स्थित अपने दूतावास को तुरन्त आदेश भिजवा सकते हैं कि आपकी ओर से मुझे जापान भेजने के लिए वह आवश्यक व्यवस्था करे। आपसे मिलने और कांग्रेस में शामिल होने की मेरी तीव्र इच्छा है, जिससे हम लोग आध्यात्मिकता के अनुशीलन के लिए एक मजबूत संगठन बना सकें। अपना कार्यक्रम निश्चित करने के लिए मैं तार द्वारा आपके निर्देश की प्रतीक्षा करूँगा।

किन्तु श्रीमान् नकानो सहायता नहीं कर सके। और भक्तिवेदान्त स्वामी के सारे प्रयत्न सपना बनकर रह गये।

• • •

जुलाई १९६२ ई. में भक्तिवेदान्त स्वामी वंशीगोपालजी मन्दिर के अपने आवास को बदलकर राधा-दामोदर मन्दिर में चले गये। तीन वर्ष से वे राधादामोदर कमरों के लिए पाँच रुपए प्रतिमास की दर से किराया और उनकी व्यापक मरम्मत के लिए खर्च दे रहे थे। अब मुख्य कमरे में बिजली और पंखा लग गया था और दीवारों पर चिकना प्लास्टर और पेंटिंग हो गई थी। कमरा पन्द्रह फुट लम्बा सात फुट चौड़ा था। दीवारों पर प्लास्टर हो गया था। फर्श विभिन्न आकार की चौकोर बलुई पटियों से बना था, ठीक वैसी ही पटियों से जैसी रूप गोस्वामी की समाधि के सामने जड़ी थीं। कमरे के सामान में एक छोटी-सी नीची डेस्क थी, एक कुश की बनी चटाई थी और सोने के लिए लकड़ी के पाए-पाटियों वाली रस्सियों से बुनी एक चारपाई थी। कमरे से वैसा दृश्य नहीं दिखाई देता था जैसाकि केशी-घाट से मिलता था। पास-पड़ोस उतना शान्त नहीं था, लेकिन अब अपने कमरे से बाहर जाए बिना भी वे मन्दिर में झाँक सकते थे और वेदी का कुछ भाग और उस पर विराजमान काले संगमरमर के बने चार फुट ऊँचे वृन्दावनचन्द्र नाम से विख्यात श्रीकृष्ण के उस श्रीविग्रह का दर्शन कर सकते थे जिसकी आराधना सैकड़ों साल पूर्व कृष्णदास कविराज ने की थी। मुख्य कमरा दस फुट लम्बे एक बरामदे द्वारा भोजनालय से जुड़ा था, जिसके सामने एक आँगन था और अपने भोजनालय से वे रूप गोस्वामी की समाधि देख सकते थे। इसलिए यह स्थान वंशीगोपालजी मन्दिर के आवास से अच्छा था, क्योंकि अब वे जीव गोस्वामी के मन्दिर में रह रहे थे, जहाँ रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, रघुनाथ गोस्वामी और जीव गोस्वामी जैसे महान् गोस्वामी एकत्र हो चुके थे, प्रसाद ग्रहण करते थे, भजन करते थे और कृष्ण और भगवान् चैतन्य के विषय में चर्चा करते थे। *श्रीमद्भागवत* पर कार्य करने के लिए यह सर्वोत्तम स्थान था।

• • •

रात्रि में एक बजे जब कोई भी न जागता होता और चारों ओर शान्ति रहती, तब भक्तिवेदान्त स्वामी जग जाते और लिखने लग जाते। चूँकि वृन्दावन में बिजली अकसर चली जाती थी, इसलिए वे प्राय: लालटेन के प्रकाश में कार्य करते। प्रकाश की कुछ किरणें बाहर बरामदे में भी पहुँच जातीं थी जब कि वे उसके प्रकाश में कमरे के अन्दर काम करते रहते। शान्त वातावरण में जब वे लिखने के कार्य में लगे रहते, तो कभी कभी पत्थर के फर्श की तरह शुष्क, कोई मेढ़क उस पार के फर्श के दर्रे से निकलकर सामने की दीवार में बनी सीमेंट की जाली में से कूदकर इस पार पहुँच जाता। कभी कोई छोटा चूहा खिड़की के पीछे से दौड़ता हुआ आता और भागकर दूसरी जगह छिप जाता। अन्यथा, कमरे में पूर्ण और पवित्र शान्ति थी और वहाँ छह गोस्वामियों की उपस्थिति में रहने की प्रेरणा बड़ी बलवती थी। खुले आँगन के ऊपर आकाश साफ दिखने वाले तारों से भरा होता था। जब वे कार्य में लीन होते, उस समय नगर में यदि कहीं से कोई आवाज सुनाई देती, तो वह दूरी पर भौंकते हुए शायद किसी कुत्ते की आवाज होती थी।

४ बजे सवेरे मन्दिर का पुजारी, जो गर्भ-गृह के द्वार के निकट सोता था, उठ जाता, बिजली जलाता और एक लम्बी लाठी से चमगादड़ों को शहतीरों से खदेड़ देता था। पाँच बजे वह श्रीविग्रहों को जगाता, वेदी के सामने के किवाड़ खोल देता और मंगल-आरती आरम्भ कर देता। वह दीप दिखाता जबकि मन्दिर के कुछ निवासी भक्त इकट्ठे होकर भजन गाते थे और वाद्य-यंत्र बजाते थे। प्राय: कोई घंटा बजाने लगता था और कोई घड़ियाल बजाने में लग जाता था।

आँगन में कोई आवाज होती, तो वह भक्तिवेदान्त स्वामी के आवास में तुरन्त पहुँच जाती थी। घंटा-घड़ियाल की आवाज उनके छोटे कमरे की दीवारों से टकराकर अचानक प्रतिध्वनि उत्पन्न करती थी। अपने बैठने के स्थान से वे वेदी की बाईं ओर आसीन केवल वृन्दावनचन्द्र को देख सकते थे। कभी कभी वे अपना काम रोक देते थे और श्रीविग्रहों के दर्शन और उनकी आरती देखने के लिए आँगन में आ जाते थे। वेदी पर राधा और कृष्ण के श्रीविग्रह आसीन थे, जिनकी आराधना सैकड़ों साल पहले जीव गोस्वामी और अन्य वैष्णव आचार्य कर चुके थे। दस मिनट के बाद आरती करने और जल से पूर्ण शंख बजाने के बाद पुजारी भक्तों के सिर पर शंख का पवित्र जल छिड़कता था और इस तरह समारोह का अन्त होता था।

श्रीमद्भागवत पर कुछ घंटे कार्य करने के बाद भक्तिवेदान्त स्वामी अपने कमरे में बैठ जाते और जप करने लगते थे। प्रात:कालीन आकाश में हल्के नीले प्रकाश के फैलने और

तारों के अस्त होने के साथ वृन्दावन के निवासी श्रीविग्रहों के और गोस्वामियों की समाधियों के दर्शन के लिए आने लगते। वृद्ध महिलाएँ लड़खड़ाती आवाज में 'जय राधे' कहती मन्दिर में प्रवेश करतीं।

जब भक्तिवेदान्त स्वामी कमरे के किवाड़ खोलते, तो उनका कमरा प्रकाश से भर जाता था। कमरे की खिड़कियाँ आँगन में खुलती थीं, लेकिन वे खिड़कियों की अपेक्षा दीवार में बनी सीमेंट की जालियाँ अधिक लगती थीं। आने-जाने वाले उनमें से कमरे में आसानी से नहीं देख सकते थे, लेकिन उनसे प्रकाश आता था। सवेरे के प्रकाश में कमरे का रूप साफ दिखाई देता था; मेहराबदार छत, ताजी पेंट की हुई दीवारें, मेहराबदार ताक, पत्थर से जड़ा हुआ फर्श। भक्तिवेदान्त स्वामी का पतला संन्यास-दण्ड गहरे केसरिया रंग के खादी में लिपटा हुआ कमरे के एक कोने में टिका था। एक खाने में उन्होंने भक्तिसिद्धान्त सरस्वती का एक चित्र रखा था और दूसरे में पुस्तकों और पाण्डुलिपियों का ढेर था। कमरे के दो किवाड़ बन्द होने पर भी मटमैले लगते थे और पूरा कमरा बाईं ओर कुछ झुका हुआ लगता था। वह साज-सज्जा-हीन था, लेकिन शान्त था।

दोनों कमरों के बीच के बरामदे में बैठे हुए भक्तिवेदान्त स्वामी प्रायः आँगन, वेदी और श्रीविग्रहों की ओर देखा करते थे। राधा-दामोदर, वृन्दावनचन्द्र और राधा-कृष्ण के अन्य कई श्रीविग्रह दर्शकों की प्रतीक्षा में रहते। सवेरे की बेला में श्रीविग्रहों के किवाड़ खुले रहते थे, क्योंकि लगातार दर्शकों की पंक्ति से मन्दिर जनसंकुल तीर्थस्थान बन जाता था। वहाँ कोई अधिक देर तक नहीं रुकता था। कुछ दर्शकों को कई मन्दिरों में जाना होता था, इसलिए वे जल्दी में होते। गरीब लोग, स्थानीय व्यवसायी लोग और रंगीन साड़ियाँ पहने हुए उनकी स्त्रियाँ—सभी भक्त—'जय हो' 'जय राधे' कहते वेदी की ओर जाते। श्रीविग्रहों का दर्शन करने के बाद वे दरवाजे से बाहर के आँगन में पहुँच जाते—समाधियों का दर्शन करने के लिए।

यद्यपि वृन्दावन में प्राचीन वैष्णव आचार्यों के सम्मान में सैकड़ो मन्दिरनुमा छोटी समाधियां बनी थीं, भक्तिवेदान्त स्वामी उनमें से केवल श्रील जीव गोस्वामी, श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती और श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी जैसी मुख्य समाधियों का दर्शन करने जाते थे। मन्दिर के आँगन के एक अलग क्षेत्र में भजन-कुटीर और रूप गोस्वामी की समाधि थी। भक्तिवेदान्त स्वामी प्रायः रूप गोस्वामी की समाधि के सामने जप के लिए बैठा करते थे। मन्दिर से निकलकर दर्शनार्थी रूप गोस्वामी की समाधि को दण्डवत् करने इस बाहरी क्षेत्र में आते रहते थे। अधिकतर तीर्थयात्री इसे राधा-दामोदर मन्दिर के दर्शन का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अंग मानते थे और चाहे वे किसी अन्य जगह पूजा के लिए न भी रुकते हों, पर रूप गोस्वामी की समाधि के सामने वे जरूर रुकते थे।

वे दोनों हाथ जोड़कर खड़े होते थे और 'जय राधे' कहते हुए प्रणाम करते थे या माला की थैली में हाथ डाले समाधि की परिक्रमा करते हुए वे हरे कृष्ण का जप करते थे।

भक्तिवेदान्त स्वामी दर्शको की सवेरे की भीड़ खत्म हो जाने पर भी बैठे रहते और जप करते रहते, या कभी-कभी वे पास के राधा-श्यामसुन्दर या राधा-मदनमोहन मन्दिर में चले जाते। ग्यारह बजे तक अपना भोजन बनाने के लिए वे हमेशा लौट आते थे। जब वे अपना भोजन बनाते रहते और बाद में जब वे प्रसाद ग्रहण करने के लिए बैठते, तब भी जाली से रूप गोस्वामी की समाधि को निहारा करते। रूप गोस्वामी की उपस्थिति की अनुभूति से उन्हें अपने आध्यात्मिक गुरु के निमित्त अपने मिशन का स्मरण सदैव बना रहता।

भगवान् चैतन्य के भक्त रूप गोस्वामी के अनुगामी या रूपानुग कहलाते थे। रूप गोस्वामी की शिक्षाओं और दृष्टान्त का अनुगमन किये बिना कोई राधा और कृष्ण की सच्ची भक्ति के मार्ग पर नहीं चल सकता। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती विशेष रूप से एक पक्के रूपानुग के रूप में प्रसिद्ध थे। उनके सम्मान में लिखित संस्कृत की प्रार्थनाओं में कहा गया है, "श्री चैतन्य के अनुग्रह की साकार शक्ति श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती के प्रति मैं अपनी विनम्र प्रार्थना निवेदित करता हूँ, जो श्रील रूप गोस्वामी की परम्परा में उद्घाटित राधा-कृष्ण के दाम्पत्य प्रेम से सम्पन्न भक्ति का प्रचार करते हैं। मैं आपके प्रति सादर प्रणाम करता हूँ, जो भगवान् चैतन्य की शिक्षाओं की साकार मूर्ति हैं। आप पतित आत्माओं के उद्धारकर्ता हैं। आप किसी ऐसे कथन को सहन नहीं कर सकते, जो श्रील रूप गोस्वामी द्वारा प्रतिपादित भक्ति की शिक्षाओं के विरुद्ध हो।"

भक्तिवेदान्त स्वामी के आध्यात्मिक गुरु और गुरु-शिष्य परम्परा में उनके पूर्व के आध्यात्मिक गुरु कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रसार सारे संसार में देखना चाहते थे और रूप गोस्वामी की समाधि के सामने प्रेरणा के लिए बैठते हुए भक्तिवेदान्त स्वामी प्रतिदिन अपने आध्यात्मिक पूर्वगामियों से मार्गदर्शन के लिए प्रार्थना करते थे। जो प्रेमपूर्ण आदेश उनसे प्राप्त होते थे, उन्हें वे निश्चित आदेश मानते थे और उससे उन्हें सरकार, प्रकाशक या अन्य कोई विचलित नहीं कर सकता था। रूप गोस्वामी चाहते थे कि वे पश्चिमी जगत में जायें; श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती चाहते थे कि वे पश्चिमी जगत में जायें; कृष्ण ने ऐसा संयोग घटित किया था कि वे राधा-दामोदर मन्दिर में आयें और उनके आशीर्वाद प्राप्त करें। राधा-दामोदर मन्दिर में उन्हें ऐसा लगा कि उनका प्रवेश ऐसे शाश्वत निवास में हुआ है, जिसे भगवान् के केवल सच्चे भक्त ही जानते हैं। तो भी, यद्यपि वे उन्हें अपनी लीलाभूमि में अपने साथ सम्बन्धित होने का अवसर दे रहे थे, लेकिन उनका आदेश था कि वे राधा-दामोदर और वृन्दावन को छोड़कर पश्चिम को जायें और विस्मरणशील संसार

को आचार्यों का सन्देश सुनाएँ।

• • •

जून में असहनीय गरमी पड़ने लगी और दोपहर के बाद काम करना असम्भव हो गया। घोर गरमी के समय भक्तिवेदान्त स्वामी दरवाजे और खिड़कियाँ बन्द कर देते और छत पर लगा पंखा चला देते। संध्या के समय गरमी कम हो जाती, मन्दिर में दर्शनार्थियों की भीड़ लग जाती, और आंगन में सायंकालीन कीर्तन आरम्भ हो जाता। अपने बरामदे में बैठे भक्तिवेदान्त स्वामी कभी दर्शनार्थियों से बातें करते, कभी दर्शनार्थी उनके दरवाजे के पास आ जाते और टाइपराइटर पर काम करते हुए उन्हें देखने लगते। वृन्दावन में उनकी प्रसिद्धि एक विद्वान और श्रेष्ठ भक्त के रूप में थी। लेकिन वे यथा-सम्भव सबसे अलग बने रहे, विशेषकर १९६२ ई. की गरमी में, और *श्रीमद्भागवत* पर कार्य करते रहे।

उनके वृन्दावन आने का यही वास्तविक उद्देश्य था कि वे पश्चिम में वितरित करने के लिए पुस्तकें तैयार कर सकें। यद्यपि उनके पास इतने साधन नहीं थे कि वे जापान तक भी यात्रा कर सकें और पुस्तकें छाप सकें, किन्तु जिन उद्देश्यों को सामने रखकर वे कार्य कर रहे थे, वे यही थे। वे वृन्दावन इसलिए नहीं आये थे कि मृत्यु को प्राप्त करके ईश्वर तक पहुँचे। प्रत्युत वे इसलिए आये थे कि वृन्दावन उनके जीवन के मुख्य कार्य को सम्पादित करने हेतु आध्यात्मिक बल प्राप्त करने के लिए आदर्श स्थान था। अपने भविष्य के मिशन के ठीक रूप के बारे में भक्तिवेदान्त स्वामी को पता नहीं था, लेकिन वे यह जरूर जानते थे कि उन्हें पाश्चात्य जगत की अँग्रेजी-भाषी जनता में *श्रीमद्भागवत* का प्रचार करने के लिए अपने को तैयार करना है। उन्हें अपने गुरुओं के लिए सब प्रकार से पूर्ण उपकरण बनना था; और यदि उनकी इच्छा हुई तो वे उन्हें वहाँ भेजेंगे। ●